Saarth E-Journal

Saarth E-Journal of Research

E-mail : sarthejournal@gmail.com
www.sarthejournal.com

ISSN NO : 2395-339X
Peer Reviewed
Vol.8 No.48

Impact Factor
Quarterly
Jan-Feb-March 2023

आदिवासी हिन्दी उपन्यास एक द्रष्टि

डॉ. प्रेमचंद एम.कोराली

आदिवासी शब्द से स्पष्ट होता है कि, जो पहलेसे यहां रह रहे हो, आदिवासी (आदि-वासी) रहे हो । इन्हें संविधान की पंचम् अनुसूची में'जनजातियाँ'इस शब्द से परिभाषित किया है । साथ ही इन्हें वनवासीआत्विका, गिरिजन, वन्यजाति या आदिमजाति भी कहा जाता है । इस संकल्पनापर प्रकाश डालनेवाली जेकबस तथा स्टर्न की परिभाषा देखिए वे कहते हैं -"एक ऐसाग्रामीण समुदाय या ग्रामीण समुदायों का ऐसा समुह जिसकी समान भूमि हो, समानभाषा हो, समान सांस्कृतिक विरासत हो और जिस समुदाय के व्यक्तियों का जीवनआर्थिक दृष्टि से एक दूसरे के साथ ओतप्रोत हो, जनजाति कहलाता है ।"[१]

आदिवासियों को केन्द्र में रखकर भारतीय स्तर पर अनेक भाषाओं मेंसाहित्य लिखा जा रहा है । जिसमें महाश्वेतादेवी, विमल मिश्र, डॉ. विजयचौरसियाँ, सतीनाथ भादुडी आदि साहित्यकार अपनी-अपनी और से योगदान दे रहेहै । हिन्दी में आदिवासियों पर अनेक विद्याओं में साहित्य सृजन का आरंभ हुआ है साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में कथा साहित्य में लेखन का औसत कुछज्यादा है, और उसमें भी उपन्यास विधा सशक्त दिखाई देती है।

हिन्दी आदिवासी उपन्यासों का जब अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट होता है किउपन्यासकारों ने उन पहलुओं को उजागर किया है जिसमें खेतों-खलिहानों, वीरानों,चौराहों, और सड़कों पर उग्रवादियों का शिकार हुए लोगों के शव, पुलिस काअत्याचार, सैनिकों का दमनचक्र, मातृसत्तात्मकसमाज व्यवस्था का वर्तमानव्यवस्था में समायोजन में कठिनाईयां, सांस्कृतिक समायोजन का भय, बहिरागतोऔर स्थानीय लोगों में अविश्वास आदिसब कुछको

लेकर आदिवासी रचनाकारचिंतितऔर उदेलित है । पूर्वोत्तर के उपन्यासकार भी अपने उपन्यासों के कथानकमें इन समस्याओं को समाहित करते हैं । बहिरागतों द्वारा पहले विवाह औरफिरतलाक के अनुभव से गुजर चुकी आदिवासी महिलाओंके मन में पल रहीबहिरागतों के प्रति धृणातथा बहिरागत और स्थानीय के बन्धनों को नकारकर पनपेप्रेम-सम्बन्धों की दुःखद परिणति का चित्रण भी इन उपन्यासकारों ने किया है ।उसके अलावा उन्हें औधोगीकरण के नाम पर जल-जमीनों और जंगलो से निर्वासित किया जा रहा है । ऐसी अनेक समस्याओं को हिन्दी उपन्यासकारों ने उकेरा है और इन्हें होशिये से निकालकर हम भी मानव हैं, हमे भी उतना ही हक है जितना यहाँ केगाँवोमें, नगरों में रह रहे मानवों को है का संदेश आदिवासीयों एवं अभिजीतजातियों, धर्मों के लोगों को दिया है।

विजोया सावियान मेघालय की प्रतिष्ठित लेखिका और उपन्यासकार है । उन्हों ने अपने उपन्यास 'धुंध में खोए लोग' में बाहर वालों की घुसपैठ और स्थानीयलोगों की सुविधाओं में इसके फल स्वरुप होने वाले बटवारे, रोजगार की सीमितसंभावनाओं के कारण असंतोष और असुरक्षा की भावना आदि का स्पष्ट चित्रणकरते हुए इस असंतोषजनित आक्रोश और गुस्से के कारण उत्तेजित लोगों द्वाराअवकाश प्राप्त उस इंस्पेक्टर कोंग को ही गोली मार देना, जो जीवनभर शांतिव्यवस्था कायम रखने के लिए सचेष्ट रहा था आदि का वर्णन किया है । इसउपन्यास का संवाद उद्भुत कर रहा हूँ - ''जिस आदमी सिपाही पर गोली चलाई, वहसरकार को अपना एक संदेश भेज रहा था, 'आरक्षण के मुद्दे पर बातचीत में देरीकरोगे तो तुम्हें यह ही मिलेगा' । बाहर सेआए लोगआरक्षण का कायदा क्योंउठाए ? हम सब नौकरी के लिए जुड़ा रहे हैं ! वे अपने घर, यानी अपनी मातृभूमिको क्योंनहीं लौटजाते?''[२]

अपने इसी उपन्यास के कथानक में सावियान ने मातृसत्तात्मक परंपरा केकारण बालक-बालिकाओं केमनोविज्ञान काभी सफल चित्रण किया है । बालक-बालिकाओं का सौतेले पिता से लगाव, पूर्व पिता द्वारा माँ को गुजाराभता देना, बालक-बालिकाओं को दोतरफी वफादारी बच्चों को असुरक्षित बनादेती है । मैत्रीय पुष्पा कहती हैं..''कभी-कभी सडकों, गलियों में घूमते या अखबारों की अपराध-सुर्खियों में दिखाई देनेवाले कंजर, साँसी, नट मदारी, संपेरे, पारदी,हाबडे, बनजारे, बावरिया, कबूतर न जाने कितनी जनजातियां है जो सभ्यसमाज के हाशिये पर डेरा लगाए सदियों गुजार देती हैं - हमारा उनसे चौकना संबंधसिर्फ काम चलाऊ ही बना रहता है । उनके लिए हम हैं'कज्जा'और 'दिकू'यानीसभ्य सम्भ्रांत, परदेशी उनका इस्तेमाल करनेवाले शोषक, उनके अपराधों से डरते हुए मगर अपराधी बनाये रखने केआग्रही ।'[3] उपन्यासकार केवल आदिवासियों कीजीवन समस्याओं, शोषण को ही नहीं उनके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को,उत्सव, पर्व-त्योहार, अंधविश्वास, आवास-निवास, रुढि, परंपरा, आचार-विचार,संसाधन आदि को भी हमारे सामने रखते हैं।

बीसवी सदी के उत्तरार्ध में मुख्यतः आदिवासियों को हिन्दी उपन्यासों में मुख्य रुप से स्थान मिला है । जिसमें इन उपन्यासों के नाम लिये जा सकते हैं । रथके पहिए (देवेन्द्र सत्यार्थी-१९५२), कब तक पुकारूँ (रांगेय राघव-१९५८), सूरजकिरण की छाँव (राजेन्द्र अवस्थी-

१९५८), जंगल के फुल (राजेन्द्र अवस्थी१९६१), जंगल के आस-पास (राकेश वत्स-१९८४), शैलुष (शिवप्रसाद सिंह१९८६), धार (संजीच-१९९०), गगन घटा धहरानी (मनमोहन पाठक-१९९१), पांव तले की दूब (संजीव-१९९४), जहाँ बासुफूलते हैं (श्रीप्रकाश मिश्र-१९९७), अल्मा-कबूतरी (मैत्रीय पुष्पा-२०००) जंगल जहाँ शुरु होता है (संजीव-२०००),आदि । इन उपन्यासों में करनटो, नटो,संथाल, मुंडा, गोंड, मिजो, उरांव, कबूतराआदि जनजातियों के सामाजिक, सांस्कृतिक जीवनके साथ-साथ उन पर होरहेअन्याय-अत्याचार शोषण उपन्यासकारों ने अभिव्यक्त किया है - "महाजनी औरसामंती दखलंबाजी की मिसालें सावधान ! नीचे आग है तक पसरी हुई हैं। इसीतरह पांव तले की दूब में जनजातीय समाज की नवीनतम आकांक्षाओं और संघर्षोंकोवैज्ञानिक आलोड़नों के साथ उत्कर्षित किया गया है।"[4]

पिछले दो दशक के उपन्यासों में देखे तो ग्लोबल गाँव के देवताओं, दिकूऔर कज्जाओं (उद्योजक, व्यापारी, पुलिस, प्रशासक, राजनेता, पूंजीवादी) केशोषणको बड़ी संवेदनशीलता के साथ उजागर करते हैं । जो इस प्रकार हैं - आदिभूमि (प्रतिभा राय-२००२), कालापादरी (तेजिन्दर-२००२) पठार पर कोहरा (राकेशकुमारसिंह-२००३), रेत (भगवानदास मोरवाल-२००८), धूणी तपे तीर(हरिराम मीणा-२००८), ग्लोबल गाँव के देवता (राजेन्द्र-२००९), मरगंगोड़ानीलकंठ हुआ (महुआ माजी-२०१२) आदि ।

मणिपुर के 'उखरुल' नाम के उपन्यास का कथानक बहिरागत युवक की स्थानीय आदिवासी लड़की से प्रेम और परिणति की घटनाओं को चित्रण करता है । वह बहिरागत या स्थानीय कोई भी हो सकता है । यह गृहयुद्ध तो नहीं है लेकिन गृहयुद्ध से कुछ कम भी नहीं है । यहाँ सेना बेलगाम हो चुकी है । आदिवासी महिलाएँ बलात्कार का शिकार बन रही हैं । इन शर्मनाकघटनाओं केविरोध में,देश और प्रदेश सरकार को शर्ममहसूस करवाने के लिए, मणिपुरी महिलाओं कोनेगी होकर प्रदर्शन करना पड़ा था । पूर्वोत्तर की व्यथाकथा समकालीन आदिवासीसाहित्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । प्रतिभा राय का 'आदिभूमि' यह उपन्यासउड़ीसा के आदिवासी बोंडा जनजाति पर लिखा गया है । यह उपन्यास बोंडो के जीवन व्यवहार, हिंसा, प्रतिहिंसा, प्रतिरोध, सरलता, लोकरुति, लोकविश्वास,स्त्री-पुरुष संबंध, स्त्रीशोषण आदि को सशक्त रुप में उजागर करता है। स्वतंत्रताप्राप्ति केबाद भी इनके शोषण का सिलसिला जारि होने के सत्य कोप्रतिभा रायउजागर करती हैं । इस उपन्यास मेंशिक्षा के प्रति आदिवासियों की रुचि बढेइसलिए मास्टर सीतानाथ केमाध्यम से उपन्यासकार अपनी बात रखती है। सरकारीयोजनाओं (इंदिरा आवास योजना, साक्षरता आदि) की धोखाधड़ी झूठ-फरेब,भ्रष्टाचार, स्त्रियों की यौनशोषण आदि को अभिव्यक्त किया है । आदिवासीइलाकों में समाज सुधार करना आसान नहीं है, क्योंकि कई लोगों के स्वार्थ वहाँ पर अटके हुए होते हैं । उनमें प्रशासक बी.डी.ओ., पुलिस, राजनेता, एम.एल.ए. जैसो का समावेश होने की बात उपन्यासकार करती हैं । उपन्यास का सीतानाथ- “अपनीनिष्ठा के बल पर इस जंगली झुंड को आदमी बताने पर तुला हुआ है ।'[5] किन्तु अवसरवादी उनका तबदला दूसरी जगह कर देते हैं । इस प्रकार आदिवासी जीवन समस्याओं के साथ-साथ प्रकृति की सम्पन्ता को भी

उपन्यासकार प्रतीभा राय उजागर करती हैं। हरिराम मीणा का धूणीतपे तीर १७ नवम्बर १९९३ के दिन घटितमानगढ (राजस्थान) की घटना पर आधारित है । इस घटना की और इतिहासकारोंने अनदेखा किया था । इस उपन्यास के माध्यम हरिराम मीणा ने 'भीलो', 'मीणो' के ऐतिहासिक योगदान को उजागर करने की कोशिश की है । उपन्यास के केन्द्र मेंहैं गोविन्द गुरु का ऐतिहासिक योगदान । उपन्यास में उपन्यासकार ने स्पष्ट करने कीकोशिश की है कि, कैसे गोविंद गुरु ने मीणों को संगठित किया उनमेंकैसी जागृतिभर दी उन्हें बलिदान के लिए कैसे तैयार किया । यही इस उपन्यास की कथावस्तुहै। इसी उपन्यास पर प्रकाश डालते हुए स्वयं उपन्यासकार लिखते है - "देश कापहला जलियावाला काण्ड (१९१९) से छ: वर्ष पूर्वदक्षिणी, राजस्थान केबासंवाडा जिल्ला के मानगढ़ पर्वत पर घटित हो चुका था । जिसमें जलियावाला सेचार गुणा शहादत हुई थी।"[6] इतिहास से उपेक्षित घटना को न्याय दिलाने कीउपन्यासकारोंकी कोशिशनिश्रित रूप से सतुत्य है।

भगवानदास मोरवाल का रेत' उपन्यास हरियाणा के 'कंजर जनजाति केसामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं को प्रस्तुत करता है । 'कंजर' अर्थात्काननचर यानी जंगल में घुमनेवाले । प्रस्तुत उपन्यास एक और आदिवासी विमर्श की कृति है दूसरी और आदिवासी स्त्री विमर्श की भी कृति है । सामान्य तौर पर कंजरों कोचोरी करनेवाली जनजाति समझा जाता है । अंग्रेज सरकार ने इन पर कई बंधन डाल दिये थे जिसे उपन्यासकार ने थानेदार केसरसिंह के माध्यम से कहलवाया है।केसरसिंह कबीले के मुखिया से कहता है - "यहाँ की बिना इजाजत या इतिला दिए कोई कंजरगाँव छोडकर नहीं जा सकता और जाता है तो मुखिया को इसकी जानकरी होनी चाहिए, जिसकी इतिला मुखिया को थाने में देनी होती है ।"[7] इनकी महिलाओं को भी थाने जाकर हाजरी देनी पड़ती है। घर के परुष जेल में याबाहर होने के कारण इन्हें मजबूरी वश वेश्या-व्यवस्था करना पड़ता है। इन्हीं बातों को उपन्यासकार ने बडी स्पष्टता से उपन्यास में रखा है । उपन्यास में कंजरों केपुलिसों, अफसरों, प्रशासको द्वारा हो रहे शोषण को व्यक्त किया है । साथ ही यहउपन्यास यौन सुचिताओं की सभी सीमाएँ तोड़ देता है । 'पठार पर कोहरा','झारखंड केमुंडा' आदिवासीयों कीकरुण कथा है । राकेशकुमार सिंह ने आजादीके बाद भी आदिवासियों के जीवन समस्याओंका कोहरान न हटने की बातउपन्यास में की है । उपन्यास में साह, बाबु और बन्दकधारी संस्कृति की पोल खोलदी है, जो अंग्रेजोके झारखंड छोड़ने पर शोषण का काम कर रहे हैं । उपन्यास कीशुरुआत ही इस प्रकार हुई है-

"जंगल यहाँ से शुरु होता है
बहुत जहरीला होता है कौमनिष्ट दिकू...!"
दीकू... यानी वह व्यक्ति जो जन्मना जंगल का बासी न हो

जो जंगल के बाहर का हो । गेरे आदिवासी हो । 'दीकू' यानी वह जो दिक्कत का कारण बने, दिक्कत पेदा करे, बाध, भालु, गीध, कौए और सियार से भी ज्यादा खतरनाक होता है दिकू ।और उस में भीकौमनिष्ट ।"[8] उपन्यास मेंसरकारी योजनाओं के भ्रष्टाचार का भंडा-फोड किया है । राजीवगांधी की सरकारी योजनाओं के बारे में दस प्रतिशतवाली बात को

उपन्यासकार आदिवासियों कीयोजनाओं में हो रहे भ्रष्टाचार के रूप में इस प्रकार व्यकत करता है - "आजादी केबाद आदिवासीयों की कल्याण की योजनाएँ बनी हैं पर उनके क्रियान्वयन का क्याहुआ?आबंटित राशि का दश प्रतिशत भी देश के आदिवासियों तक नहीं पहुंचरहा है । कई योजनाएँ कागज पर चलती रहती है। कई योजनाएँ तो फाईलों कीकन में दफन हो गयी... यदि अफसरशाही और राजनीति का यही तालमेल कायमरहा तो पता नहीं कितने समय तक आदिवासी समाज इसी तरह अनपढ असंस्कृत,भूखा, नंगा, शोषित, उपेक्षित और लोकतंत्र के ज्ञान एवं विज्ञान से कटा रहेगा ।"[9]रणेन्द्र का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता', 'झारखण्ड के असुर', जनजातियों केशोषण, विस्थापन को उजागर करता है | आज वैश्विकरण के युग में एक और हमविकास कर रहे हैं, तो दूसरीऔर प्राकृतिक संसाधनों की अमर्यादा उपयोग करकेप्रकृति को दूषित कर रहे हैं । वहाँ आदिवासियों, वनवासियोंको उनके जंगलों सेखदेड़ रहे हैं ।इसी अमानवीयबातों को रणेन्द्रनेइस उपन्यास में अभिव्यक्त कियाहै । उपन्यास में असुर यानेराक्षस, बड़े-बड़े दातों, सिंगोवाला कोई जीव इससंकल्पना कोभी तोडा है । उपन्यास में वैश्वीकरण, औधोगीकर के कारण,आदिवासी आदिवासीयों पर हो रहे अन्याय-अत्याचार को भी व्यक्त किया है ।उपन्यासकार लिखते हैं-“आकाशचारी देवताओं का जब अपने आकाशमार्गसे यासेटेलाइट की आंखों सेछत्तीसगढ़, उडीसा, मध्यप्रदेश, झारखण्ड आदिराज्योंकीरवानिज सम्पदा, जंगलऔर अन्य संसाधनदिखतेहैं तोउन्हें लगता है कि राष्ट्रराज्य तो वे ही हैं, तो हक तो उनका ही हुआ । सो इने खनिजों पर, जंगलों में घुमतेहुए लंगोट पहने असुरबिरिजिया, उरांव-मुंडा आदिवासी, दलितसदान दिखते हैं तोउन्हें बहुत कोफन होती है । वे इन किड़ेमकोड़ो से जल्द निजात पाना चाहते हैं।”[१०]

तेजिन्दर का 'काला पादरी' उपन्यास मध्यप्रदेश की 'उरांव' जनजाति की समस्याओं को व्यक्त करता है । उपन्यासकार आदिवासियों का उपनिवेशिक व्यवस्था में फँसे होने का वास्तव सामने रखता है । साथ ही आदिवासी भूख, अभाव, शोषण,दारिद्य आदि से परेशान होकर ईसाई, हिन्दु, बौद्ध धर्म में दीक्षितहोने के ऐतिहासिक वास्तव की और भी संकेत करता है । आदिवासीयों केभूख,अभाव और दारिद्य को व्यक्त करता हुआ वह लिखता है - “साहब रात में बच्चा मर गया । उसकी माँ ने कई दिनों से कुछ खाया नहीं था ।"[11] उसको गोंद में लेकर उसकीमाँ भी मर गयी । उसने भी कई दिनों से कुछ खाया नहीं था।" उपन्यासमें भूख मिटाने के लिए जहरीली वनस्पतियाँ बिल्लियों का मांस खाने का वास्तवसामने रखा--"वास्तव में 'काला पादरी' उपन्यास में भारत के सर्वाधिक उत्पीडितएवंउपेक्षित आदिवासीयों की जीवन स्थितियों के अनेक पहलुओं को लेखक नेसमाजशास्त्रीय दृष्टि, किन्तु साथ ही लेखकीय संवेदना से चित्रित किया है किभारतीय समाज की जटिलता भी उभरकर सामने आती है और साथ ही आदिवासियों के जीवन की पीड़ा का मार्मिक अंकन भी लेखक की कलम से होता चलता है ।"[12] उपन्यास में ईसाई मतों के प्रचार-प्रसार कीऔर भी ध्यान खींचा है ।

निष्कर्ष:

अंततः हम कह सकते है कि आदिवासी उपन्यास केवल आदिवासीयों केप्राकृतिक, सांस्कृतिक जीवन को व्यक्त नहीं करते तो वैश्वीकरण, बाजारीकरण केयुग में आदिवासीयों के सामने ही नवीनत्तम समस्याओं को सामने रखते है औरउनसे कैसे निपटा जा सकता है का सुझाव भी उपन्यासकार देते है । इन उपन्यासों में 'उरांव', 'भील', 'बोडा', 'कंजर', 'असुर आदि जनजातियों को केन्द्र मेंरखकर लिखे गये है।

संदर्भसुची

१. डॉ. लक्ष्मणप्रसाद सिन्हा-भारतीय आदिवासीयों की सांस्कृतिक प्रकृति-पूजाऔर पर्व-त्यौहार, पृ. ८८
२. आदिवासी विमर्श अवधारणा और आंदोलन-कुमार कमलेश, पृ. ९९
३. मैत्रेयी पुष्पा-अल्मा-कबूतरी, पृ. मुलपृष्ठ
४. विद्याभूषण-बीसवी सदी के उत्तरार्ध में, पृ. ६८
५. कृष्णचंद्र गुप्त--बोंडा जाति का औपन्यासिक समाजशास्त्र, हंस-फरवरी,२००२, पृ. ८८
६. हरिराम मीणा-'धूणी तपे तीर' के बारे मे भूमिका
७. भगवानदास मोरवाल, रेत, पृ. ५१
८. राकेशकुमार सिंह- पठार पर कोरा', पृ. ०१.
९. वही, पृ. १३७
१०. रणेन्द्र, 'ग्लोबल गांव के देवता' - प्रस्तावना
११. तेजिन्दर काला पादरी, पृ. २१
१२. प्रो. चमनलाल, दलित साहित्य : एक मूल्यांकन, पृ. १३३

धर्मेन्द्रकुमार एच.राठवा
एस-एस-एफ-4,
एस.पी. युनिवर्सिटी कोलोनी,
वि.वि.नगर, आणंद, (गु.रा.)
dh.rathva83@gmail.com
Mo. : 9879347581

डॉ. प्रेमचंद एम.कोराली
एसोसिएट प्रोफेसर
आणंद आर्ट्स कॉलेज,
आणंद.